तीर्थों में तर्पण एवं श्राद्ध की संक्षिप्त विधि

सभी तीर्थों में तर्पण एवं श्राद्ध करने का विधान है। अत: यहाँ इन दोनों की संक्षिप्त चर्चा की जायगी। तर्पणक्रम एवं विधि का ज्ञान अपनी शाखा के ग्रन्थों से प्राप्त करना चाहिये। यहाँ माध्यन्दिन शाखा के अनुसार सरलतम प्रामाणिक तर्पणविधि लिखी जा रही है।

स्नानाङ्ग तर्पण – गङ्गादि तीर्थों में स्नान के पश्चात् स्नानाङ्ग-तर्पण करना चाहिये। संध्या के पहले इसका करना आवश्यक माना गया है।

स्नानादनन्तरं यावत्तर्पयेत्पितृदेवता:। (आचारेन्दु: पृ. 46)

स्नानाङ्गं तर्पणं विद्वान्कदाचिन्नैव हापयेत्।। (आचारेन्दु: पृ. 46)

यही कारण है कि आशौच में भी इसका निषेध नहीं होता तथा जीवित-पितृकों के लिये भी यह विहित है।

आशौचेऽपि तद्भवति।......अत्र देव पितॄणामेवेज्यत्वात् साङ्गस्य
चानुष्ठेयत्वाज्जीवितपितृकस्याप्यधिकार:।।

(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 29 में आचाररत्न का वचन)

जीवित-पितृकों के लिये केवल इसका अन्तिम अंश त्याज्य होता है, जिसका निर्देश यथास्थान किया जायगा। इसमें तिलक जल से ही किया जाता है। बायें हाथ में जल लेकर दाहिने अँगूठे से ऊर्ध्वपुण्ड्र कर ले। तदनन्तर तीन अँगुलियों से त्रिपुण्ड्र करे।

जलाञ्जलि देने की रीति यह है कि दोनों हाथों को सटाकर अञ्जलि बना ले। इसमें जल भरकर गौ के सींग-जितना ऊँचा उठाकर जल में ही अञ्जलि छोड़ दे।

द्वौ हस्तौ युग्मत: कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलिम्।
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्।। (आचारेन्दु: पृ. 46)

इसमें देव, ऋषि, पितर एवं अपने पिता, पितामह आदि का तर्पण होता है।

देवानृषीन्पितृगणान्स्वपितॄंश्चापि तर्पयेत्।। (आचारेन्दु: पृ. 46)

प्रादेशमात्रमुद्धृत्य सलिलं प्राङ्मुख: सुरान्।
उदङ्मनुष्यांस्तर्प्येत पितॄन्दक्षिणतस्तथा।। (आचारेन्दु: पृ. 216)

अर्थात् 12 अंगुल ऊँचा जल को ऊपर उठा पूर्वमुख हो देवों का, उत्तरमुख हो मनुष्यों (ऋषियों) का तथा दक्षिणमुख हो पितरों का तर्पण करे।

तर्पण में अञ्जलि की संख्या के बारे में कहा गया है कि-

एकैकमञ्जलिं देवोभ्यो द्वौ द्वौ ऋषिभ्यस्त्रींस्त्रीन्पितभ्य इति संख्याविशेष:।

(धर्मसिन्धु: पृ. 584)

अर्थात् देवतर्पण में एक-एक, ऋषि में दो-दो तथा पितृतर्पण में तीन-तीन अञ्जलि जल

अर्पित करें।

जल अर्पित करने की विधि यह है कि देवों को देवतीर्थ से, ऋषियों को प्रजापतितीर्थ से तथा पितरों को पितृतीर्थ से जल अर्पित करें। शास्त्रों ने हाथ के अन्दर ही इन तीर्थों की कल्पना कर रखी है।

अङ्गुल्यग्रे तीर्थं दैवं स्वल्पाङ्गुल्योर्मूले कायम्।
मध्येऽङ्गुष्ठाङ्गुल्योः पित्र्यं मूले त्वङ्गुष्ठस्य ब्राह्मम्।। (धर्मसिन्धुः पृ. 586)

अर्थात् अंगुलियों के अग्रभाग में दैवतीर्थ, छोटी दोनों अंगुलियों के मूल में काय(प्रजापति) तीर्थ, अंगुष्ठ और अंगुलियों के मध्य में पितृतीर्थ और अंगुष्ठ के मूल में ब्राह्मतीर्थ होता है।

देवतर्पण में अञ्जलि के जल को अंगुलियों के अग्रभाग से नीचे गिराये, ऋषितर्पण में जल को अञ्जलि(हाथों) के बीच थोड़ा जगह बनाकर उससे जल गिराये तथा पितरों के तर्पण में जल को अंगूठे एवं तर्जनी के बीच जगह बनाकर अञ्जलि को दाहिनी तरफ घुमा कर गिराये।

तर्पण को नाभिपर्यन्त जल में स्थित हो कर करना चाहिये('नाभिमात्रजले स्थित्वा कुर्यात्स्नानाङ्गतर्पणम्' आचारेन्दुः पृ. 46)। कुश के अग्रभाग, अक्षत और जल से देव-ऋषि तर्पण तथा तिलसहित जल से पितृ तर्पण करे। (धर्मसिन्धुः पृ. 583)

देव-तर्पण- (इसे सपितृक भी करे)-सव्य(यज्ञोपवीत का बायें कंधे के ऊपर से दाहिनी कुक्षी के नीचेतक लटका होना) होकर पूरब की ओर मुँह कर अंगोछे को बायें कंधे पर रखकर देवतीर्थ से निम्न मन्त्र पढ़-पढ़कर एक-एक जलाञ्जलि दे-

ॐ **ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्**(1 अञ्जलि)। ॐ **भूर्देवास्तृप्यन्ताम्**(1)। ॐ **भुवर्देवास्तृप्यन्ताम्**(1)। ॐ **स्वर्देवास्तृप्यन्ताम्**(1)। ॐ **भूर्भुवः स्वर्देवास्तृप्यन्ताम्**(1 **अञ्जलि**)।

ऋषि-तर्पण- (इसे सपितृक भी करे)-उत्तर की ओर मुँह कर निवीती (यज्ञोपवीत को माला की तरह गले में पहनकर) होकर और गमछे को भी माला की तरह लटकाकर प्रजापतितीर्थ से निम्न मन्त्र पढ़कर दो-दो जलाञ्जलि जल में छोड़े।

ॐ **सनकादयो मनुष्यास्तृप्यन्ताम्(2 अञ्जलि)।** ॐ **भूर्ऋषयस्तृप्यन्ताम्(2)।** ॐ **भुवर्ऋषयस्तृप्यन्ताम्(2)।** ॐ **स्वर्ऋषयस्तृप्यन्ताम्(2)।** ॐ **भूर्भुवः स्वर्ऋषयस्तृप्यन्ताम् (2 अञ्जलि)।**

पितृ-तर्पण- (सपितृक इसका कुछ अंश करे)-दक्षिण की ओर मुँह कर अपसव्य (जनेऊ अर्थात् यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे और बायें हाथ के नीचे करके) होकर गमछे को भी दाहिने कंधे पर रखकर मंत्र पढ़कर पितृ-तीर्थ से तीन-तीन जलाञ्जलि दे। सपितृक जनेऊ को केवल पहुँचेतक ही रखे, बायें हाथ के नीचे न करे-**'प्राचीनावीती त्वाप्रकोष्ठात्।'**

ॐ **कव्यवाहनलादयः पितरस्तृप्यन्ताम् (3 अञ्जलि)।** ॐ **चतुर्दशयमास्तृप्यन्ताम्**

(३)। ॐ भूः पितरस्तृप्यन्ताम् (३)। ॐ भुवः पितरस्तृप्यन्ताम् (३)। ॐ स्वः पितरस्तृप्यन्ताम् (३)। ॐ भूर्भुवः स्वः पितरस्तृप्यन्ताम् (३ अञ्जलि)।

(इसके आगे का कृत्य जीवित-पितृक न करे)

ॐ **अमुक गोत्रा अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहास्तृप्यन्ताम्** (३ अञ्जलि)।

ॐ **अमुक गोत्रा अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामह्यस्तृप्यन्ताम्** (३ अञ्जलि)।

ॐ **अमुक गोत्रा अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकास्तृप्यन्ताम्** (३ अञ्जलि)।

ॐ **ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यन्ताम्** (३ अञ्जलि)।[1]

इसके बाद तट के पास आकर जल में स्थित होकर[2] भूमि पर एक जलाञ्जलि दे, जिसका मन्त्र इस प्रकार है-

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यान्तु परां गतिम्।।

जल से बाहर आकर निम्नलिखित मन्त्र से दाहिनी ओर शिखा को पितृतीर्थ(अँगूठे और तर्जनी के मध्य भाग) से निचोड़े -

लतागुल्मेषु वृक्षेषु पितरो यै व्यवस्थिताः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः शिखोदकैः।।

तर्पण के बाद का कृत्य- अब उपवीती (यज्ञोपवीत को बायें कंधे पर और दाहिने हाथ के नीचे कर) होकर आचमन करे और बाहर निम्न मंत्र से एक अञ्जलि जल यक्ष्मा को दे।[3]

---

1. **आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्वितिक्रमात्।**
जलाञ्जलित्रयं दद्यादेतत् संक्षेपतर्पणम्।।
(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 31 पर आचार दर्पण का वचन)

2. **इदं जलस्थेनैव कार्यम्।** (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 31 पर आचाररत्न का कथन)
सुमन्तु ने कहा है कि गीले वस्त्र से भूमि पर आकर जो जलाञ्जलि देता है, उसकी वह जलाञ्जलि मृत व्यक्ति को नहीं मिलती। फिर विवश होकर बेचारे को केवल वस्त्र के जल का ही सहारा रह जाता है-
जलार्द्रवासाः स्थलगो यः प्रदद्याज्जलाञ्जलिम्।
वस्त्रनिश्च्योतनं प्रेता अपवार्य पिबन्ति ते।।
(अपवार्य-अञ्जलिं त्यक्त्वेति हेमाद्रिः) (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 31)

3. **स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा यक्ष्मणे जलमाहरेत्।** (आचारेन्दुः पृ. 46)
अन्यथा कुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत्।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 32)

यन्मया दूषितं तोयं शारीरं मलसम्भवम्।
तस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम्।।

(विश्वामित्रस्मृति 1/84 थोड़े परिवर्तन के साथ आचारेन्दुः पृ. 49 पर)

जीवितपितृक वस्त्र निचोड़कर संध्या करने बैठे[1], किंतु जिन्हें तर्पण करना है, वे अभी वस्त्र को न निचोड़े, तर्पण के बाद निचोड़े।[2]

स्नान के बाद यदि देह न पोंछी जाय, जल को यों ही सूखने दिया जाय तो अधिक अच्छा है, क्योंकि सिर से टपकनेवाले जल को देवता, मुखभाग से टपकनेवाले जल को गन्धर्व और नीचे से गिरनेवाले जल को सभी जन्तु पीते हैं।[3] यदि शक्ति न हो तो गीले अथवा धोये गमछे से पोंछकर सूखा वस्त्र पहने।[4] गंगादि तीर्थों में स्नान करने पर शरीर न पोंछने का विशेष ध्यान रखना चाहिये। अन्य स्थलों पर कुछ क्षण रुककर गमछे से शरीर पोंछ सकते हैं। स्नान के बाद गीले वस्त्र से मल-मूत्र न करे। अन्यथा प्रायश्चित्तस्वरूप उसे तीन प्राणायाम कर पुनः स्नान करना चाहिये। तभी वह पुनः शुद्ध हो सकेगा।[5]

तीर्थों में श्राद्ध की विधि

प्रायः प्रत्येक तीर्थ में श्राद्ध करने का विधान है। गया, ब्रह्मकपाली(बदरीनारायण), कपिलधारा(नर्मदातट) आदि तीर्थ तो श्राद्ध के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। तीर्थश्राद्ध में अर्घ्य,

---

1. **निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु पश्चात् संध्यां समाचरेत्।**
अन्यथा कुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत्।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 32 पादटिप्पणी)
2. **स्नानार्थमुपगच्छन्तं देवाः पितृगणैः सह।**
वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ताः सलिलार्थिनः।।
निराशाः पितरो यान्ति वस्त्रनिष्पीडने कृते।
तस्मान्न पीडयेद् वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम्।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 32 पादटिप्पणी)
3. **पिबन्ति शिरसो देवाः पिबन्ति पितरो मुखात्।**
मध्यतः सर्वगन्धर्वा अधस्तात् सर्वजन्तवः।।
तस्मात् स्नातो न निर्मृज्यात् स्नानशाट्या न पाणिना।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यावन्त्यङ्गरुहाणि वै।
वसन्ति सर्वतीर्थानि तस्मान्न परिमार्जयेत्।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 32 पादटिप्पणी)
4. **अङ्गानि शक्तो वस्त्रेण पाणिना न च मार्जयेत्।**
धौताम्बरेण वा प्रोञ्छ्य बिभृयाच्छुष्कवाससी।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 33 पादटिप्पणी)
5. **स्नानं कृत्वार्द्रवस्त्रस्तु विण्मूत्रं कुरुते यदि।**
प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनः स्नानेन शुद्ध्यति।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 33 पादटिप्पणी)

आवाहन, विप्राङ्गुष्ठनिवेशन, तृप्तिप्रश्न, विकिर, विसर्जन और दिग्बन्ध नहीं किया जाता (धर्मसिन्धुः पृ. 847)।

अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजांगुष्ठनिवेशनम्।
तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्जयेत।।

(निर्णयसिन्धुः, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, पृ. 775)

तीर्थ में ब्राह्मण-परीक्षण भी नहीं करना चाहिये। पिण्डदान पायस, संयाव (घी, दूध, आटे को पकाकर बनाये गये एक पदार्थ) अथवा सत्तू आदि से किया जाता है। इस श्राद्ध में जिसका पिता जीवित हो, उसका भी अधिकार है।

तीर्थयात्री को तीर्थ में स्नानादि नित्यकर्म समाप्त कर रक्षादीप(साक्षिदीप) जलाकर, पूर्वमुख बैठकर पहले पवित्र धारणपूर्वक प्राणायाम करना चाहिये। तदनन्तर -

श्राद्धारम्भे गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम्।
स्वपितॄन् मनसा ध्यात्वा ततः श्राद्धं समारभे।
सप्य व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे।।
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ।।
नमो नमस्ते गोविन्द पुराणपुरुषोत्तम।
इदं श्राद्धं हृषीकेश रक्षतां सर्वतो दिशः।।
प्राच्यै नमः। अवाच्यै नमः। प्रतीच्यै नमः। उदीच्यै नमः।।

-इन मन्त्रों से गया, गदाधर आदि देवताओं तथा दिशाओं को नमस्कार करके यव तथा पुष्पों से '**श्राद्धभूम्यै नमः**' कहकर पृथ्वी का प्रोक्षण करना चाहिये। फिर 'ॐ **अपवित्रः पवित्रो वा०**' मन्त्र से अपने ऊपर जल छिड़ककर देश-काल का कीर्तन करते हुए निम्न प्रकार से संकल्प करना चाहिये-

ॐ **तत्सत् अद्य........अमुकोऽहं........अमुकगोत्राणां पित्रादिसमस्तपितॄणां मोक्षार्थ-मक्षयविष्णुलोकावाप्त्यर्थं मम आत्मसहितैकोत्तरशत**[1] **कुलोद्धारणार्थं अमुक गयातीर्थे श्राद्धमहं**

1. पिता के गोत्र में 24, मातृगोत्र में 20, स्त्री के गोत्र में 16, भगिनी के गोत्र में 12, पुत्री के गोत्र में 11, बूआ के गोत्र में 10 तथा मौसी के गोत्र में 8-ये सात गोत्रों के एक सौ एक पुरुष हैं।

पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा।
पितृष्वसा मातृष्वसा सप्तगोत्राणि वै विदुः।।
तत्त्वानि विंशतिनृपा द्वादशैकादशा दश।
अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतम्।।

(तीर्थांक पृ. 694 की पादटिप्पणी में कर्मकाण्डप्रदीप का वचन)

करिष्ये।

फिर- **देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।**
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः।।

-इस श्राद्ध-गायत्री को तीन बार पढ़कर अपसव्य हो जाय, अर्थात् जनेऊ(यज्ञोपवीत) को दाहिने कंधे पर धारण कर ले। तत्पश्चात् दक्षिणमुख होकर बायाँ घुटना मोड़ दे और एक वेदी बनाकर-

ॐ अपहता असुरा रक्षा॑ꣳसि वेदिषदः।

-इस मन्त्र से उस पर तीन रेखाएँ खींचकर-

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।
परा पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात्।।

-इस मन्त्र से उसके ऊपर अङ्गार घुमाये और उसे दक्षिण की ओर गिरा दे। फिर उस पर छिन्नमूल कुशों को फैलाकर पुरुषसूक्त[1] के 16 मन्त्रों का पाठ कर ले। तत्पश्चात् एक दोने(पत्तों की बनी कटोरी) में जल, तिल तथा चन्दन छोड़कर मोटक(दो पत्तियोंवाली कुशा) और तिल-जल लेकर कहे-

अद्यामुकगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहा अमुकामुक शर्माणः(या वर्माणः आदि) अमुकतीर्थश्राद्धपिण्डस्थानेषु अत्रावनेनिग्ध्वं वः स्वधा ।। 1 ।।

अद्यामुकगोत्राः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहा अमुकामुकशर्माण(वर्माण आदि)-स्तीर्थश्राद्धे अत्रावनेनिग्ध्वं वः स्वधा ।। 2 ।।

अद्यामुकगोत्राः पितृव्यादिसमस्ताश्रितपितरः तीर्थश्राद्धे अत्रावनेनिग्ध्वं वः स्वधा ।। 3 ।।

तत्पश्चात् पिण्डों का निर्माण करके उन्हें हाथ में लेकर तिल, मधु, घी आदि मिलाकर एक पिण्ड-

अद्यामुकगोत्र पितः! अमुकशर्मन्(वर्मन् आदि)! अमुकतीर्थश्राद्धे एष ते पिण्डः स्वधा।

-कहकर अर्पित करे। इसी प्रकार नाम-गोत्र का उच्चारण करके पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही, पत्नी, पुत्र, पुत्री, पितृव्य(चाचा), मातुल(मामा), मित्र, भ्राता, पितृभगिनी(बूआ), मातृभगिनी(मौसी), आत्मभगिनी(बहन), श्वशुर, श्वश्रू(सास), गुरु, शिष्यादि के लिये भी पिण्डदान करना चाहिये। अन्त में-

अज्ञातनामगोत्राः समस्ताश्रितपितरस्तीर्थश्राद्धे एष वः पिण्डः स्वधा।

1. यजुर्वेद के 31 सवें अध्याय के प्रारंभ के 16 मन्त्र। इन मन्त्रों का मूल पाठ इसी पुस्तक के 'शिवशतनामस्तोत्र' वाले अध्याय के अन्तर्गत आया है। पाठक वहाँ देख सकते हैं।

–कहकर सभी अज्ञात पितरों को भी एक पिण्ड दे। फिर एक सामान्य पिण्ड निम्न मन्त्र से दे–

पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे तथैव च।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवादयः।।
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः।
क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा।।
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम्।।

–इसी प्रकार निम्नलिखित मन्त्र से एक पिण्ड और देना चाहिये–

आब्रह्मणो ये पितृवंशजाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः।
कुलद्वये ये मम दासभूता भृत्यास्तथैवाश्रितसेवकाश्च।।
मित्राणि शिष्याः पशवश्च वृक्षाः स्पृष्टाश्च दृष्टाश्च कृतोपकाराः।
जन्मान्तरे ये मम संगताश्च तेभ्यः स्वधा पिण्डमहं ददामि।।
उच्छिन्नकुलवंशानां येषां दाता कुले न हि।
धर्मपिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु।।

फिर **'हस्तलेपभाजः पितरः प्रीयन्ताम्'** इस मन्त्र से कुश–मूल से हाथ पोंछकर सव्य हो जाय–यज्ञोपवीत को पुनः बायें कन्धे पर ले आये और भगवान् का स्मरण करे। तत्पश्चात् पुनः अपसव्य होकर **'अत्र पितरो मादयध्वम्'** इस मन्त्र का जप करे। फिर बायें क्रम से घूमते हुए उत्तरमुख हो जाय और श्वास रोककर **'अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायीषत'** कहते हुए दक्षिणमुख होकर पिण्ड छोड़ दे। फिर निम्न वाक्यों से प्रत्यवनेजनजल दे[1]–

अद्यामुकगोत्राः पितृपितामहाः तीर्थश्राद्धपिण्डेषु अत्र प्रत्यवनेनिग्ध्वं वः स्वधा।
अद्यामुकगोत्राः मातामहादयः तीर्थश्राद्धपिण्डेषु अत्र प्रत्यवनेनिग्ध्वं वः स्वधा।।
अद्यामुकगोत्राः समस्ताश्रितपितरः तीर्थश्राद्धे अत्र प्रत्यवनेनिग्ध्वं वः स्वधा।

फिर नीवी–विसर्जन[2] करके सव्य हो आचमन कर भगवत्स्मरण करे तथा पुनः अपसव्य हो जाय। फिर एक सूत लेकर–

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वः। एतद्वः पितरो वासः।

–इस मन्त्र से सभी पिण्डों पर उसे रख दे या प्रत्येक पिण्ड पर एक–एक या तीन–तीन सूत

1. पिण्डदान के बाद दिया जानेवाला जल 'प्रत्यवनेजनजल' तथा कुशा के बिछाने पर पिण्डदान के पहले दिया जानेवाला जल 'अवनेजन' कहलाता है।

2. धोती के पल्ले के छोर के अन्त में अपनी रक्षा के लिये बाँधी गाँठ को 'नीवी' कहते हैं। गांठ खोलना ही नीवी–विसर्जन कहलाता है।

दे। तत्पश्चात् सभी पिण्डों पर पितृपूजन के उद्देश्य से गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य ताम्बूल आदि अर्पण करे और फिर सव्य होकर **'अघोराः पितरः सन्तु'** तथा 'ॐ **ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् स्वधास्थ तर्पयत् मे पितॄन्।'** -इन मन्त्रों से पिण्ड पर पूर्वमुख होकर जलधारा गिराये। फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे-

अघोराः पितरः सन्तु। गोत्रं नो वर्द्धताम्। दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्। वेदाः संततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमत्। बहु देयं च नोऽस्तु। अन्नं च नो बहु भवेत्। अतिथींश्च लभेमहि। याचितारश्च नः सन्तु। मा च याचिष्म कंचन। एताः सत्या आशिषः सन्तु। सन्त्वेताः सत्या आशिषः।

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्तु तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः।।

फिर अपसव्य होकर पिण्ड पर पवित्रसहित कुशों को रखकर दक्षिणमुख होकर पूर्वोक्त **'ऊर्जं वहन्तीरमृतं०'** मन्त्र से पुनः जल धारा दे और झुककर पिण्डों को उठाकर रख ले तथा पिण्डों के आधारभूत कुशों को अग्नि में डाल दे और -

अस्य तीर्थश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं पितॄणां स्वर्णं रजतं तदभावे किंचिद् व्यावहारिकं द्रव्यं वा यथानामगोत्रेभ्यः ब्राह्मणेभ्यः दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे।[1]

इस संकल्प से ब्राह्मण को यथाशक्ति दक्षिणा दे। सम्भव हो तो यथाशक्ति एक या तीन ब्राह्मणों को भोजन कराकर पूजा करे। फिर रक्षादीप बुझाकर, हाथ-पैर धोकर सव्य होकर आचमन करे तथा पुनः तीन बार पूर्वोक्त पितृगायत्री (**देवताभ्यः पितृभ्यश्च०**) का जप करे। फिर गौ, काक एवं श्वान को बलि दे और-

'अनेन पिण्डदानाख्येन कर्मणा श्रीभगवान् पितृस्वरूपो जनार्दनवासुदेवः प्रीयताम्।'

फिर- **प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।**
स्मरणादेव तद् विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः।।
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।।

-आदि मन्त्रों से **'विष्णवे नमः, विष्णवे नमः, विष्णवे नमः'** कहकर भगवत्प्रार्थना करते हुए विष्णवर्पण करके पिण्डों को तीर्थ में छोड़ दे।

इति तीर्थश्राद्धविधिः

(उपर्युक्त लेख मुख्यतः गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित नित्यकर्म-पूजाप्रकाश तथा तीर्थांक पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀

1. 'श्राद्धगणपति' के अनुसार दक्षिणा देने के बाद भी **'सप्तव्याधा दशार्णेषु०'** आदि पूर्वोक्त श्लोक पढ़ने चाहिये।